शिक्षक प्रशिक्षण का मतलब सीखे तरीकों को कक्षा के ऊपर बिल्कुल वैसे ही थोप देना नहीं है, बल्कि बच्चों की समझ, उनके सीखने की क्षमता के आधार पर किसी गतिविधि में बदलाव लाना है।

सीखने की क्या गति और क्या विधि

● वेणु ऐंडले

आज पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को कहानी सुनाई। सबसे पहले जंगल के बारे में चर्चा हुई, फिर पुस्तक के कवर पर छपे शेर के चित्र पर बच्चों के साथ विस्तृत बातचीत हुई। पहली कक्षा के बच्चे स्वयं बोल रहे थे:

"बहनजी मैं बंदर देखा।"

"शेर! हां बहनजी, हमने भी देखी थी। जंगल में हाथी भी देखी थी।"

चुनमुन - "राधेश्याम के साथ गए थे जंगल में तो कोय नई देखी।"

दूसरी कक्षा की ललिता, "बहनजी हमारे कक्का ने देखी, शेर अपन को खाती है।"

चंद्रभान - "बहनजी, एक शेर ने बैल को मार दई, खूब बड़ा मुंह फाड़ती है खाने कू।"

इस प्रकार प्रत्येक चित्र पर बहुत चर्चा हुई।

हाथी के बारे में कहा गया, "हाथी कू नरियल दई तो फोड़ दई।"

ललिता - "बहनजी सरकस में हाथी देखी, उसके ऊपर खूब सजी लड़की बैठी थी।"

मंगलेश - "हाथी तो हमारे घर आया था, खूब बड़ा था।"

चंद्रभान ने पूछा, (एक हाथी को दिखाते हुए जिसे चित्र में नहाता हुआ नहीं दिखाया गया था) - "ये काय को नहीं नहाती बहनजी?"

इसके बाद कितने छोटे हाथी, कितने बड़े हाथी, कितने छोटे हिरण, कितने बड़े हिरण इस सब पर बातचीत हुई।

बंदर का चित्र देखकर गुरूदयाल बोला - "बहनजी या मोड़ी जैसी दिखे है।"

कक्षा में बहुत मज़ा आया - सभी बच्चों की पूर्ण भागीदारी थी। इसी तरह यह कहानी सूक्ष्म निरीक्षण से धीमे क्रम से आगे बढ़ती रही।

(प्राथमिक शाला शिक्षिका, गंगा गुप्ता की डायरी का अंश)

चित्र पर बातचीत का यह भी एक उदाहरण है जिसमें पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को उनकी शिक्षिका बातचीत करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। चित्र पर बात करना यहां एक ऐसी गतिविधि बन गई है जिसमें बच्चों में अभिव्यक्ति, ध्यान से देखकर अवलोकन करना जैसी क्षमताओं को प्रोत्साहन देने की कोशिश हो रही है। सबसे महत्वपूर्ण बात जो हो रही है वह यह कि बच्चे चित्र देखकर इतनी बातचीत कर रहे हैं। अपने अनुभवों, अपनी देखी-सुनी बातों को इन चित्रों से जोड़ रहे हैं- जिससे सहज ही उनकी भाषा के उपयोग का अभ्यास हो रहा है।

वे एक विषय पर पूर्वजानकारी समेट कर शब्दों में डालते हैं, सुनाते हैं तो स्वाभाविक है कि उस विषय के बारे में हर बच्चे की एक व्यापक समझ बन सकती है। एक स्थिति वह भी हो सकती थी कि शिक्षिका इन जानवरों के बारे में कुछ बातें अपने ढंग से बच्चों को बता देती और बच्चे सुन लेते। शायद कुछ न भी सुनते।

लेकिन यह स्थिति कुछ अलग है। यहां इस प्रक्रिया में बच्चों की ज़ोरदार भागीदारी है। वे खुलकर भाग ले रहे हैं। यही तो सीखने की प्रक्रिया का मूल आधार है।

अब एक और शिक्षक का अनुभव पढ़िए:

कक्षा में कुछ करना है अथवा पढ़ाते-पढ़ाते बोर हो जाने की दशा में मैं परिवर्तन के बतौर खेल गतिविधियां करवाया करता था। 'बोलो भाई कितने, आप बोलो जितने' जैसे खेल खिलाने में मुझे कोई रुचि नहीं थी। लेकिन जब मैं तीसरी कक्षा में यह करवा रहा था तो मुझे इस खेल में कुछ और संभावनाएं नज़र आईं।

मैंने इसके लिए पहले बच्चों को एक गोले में खड़ा किया और उन्हें बताया कि आप लोग गोले में दौड़ते रहिए और जब मैं आपसे पूछूंगा - 'बोलो भाई कितने' जवाब में आप लोग मुझसे कहेंगे - 'आप बोलो जितने'। इसके बाद मैं जो भी संख्या बोलूं आप लोग उतने का समूह बना लेना। जैसे मैं 'चार' बोलूं तो आप लोग चार-चार के समूह बना लेंगे और जो बच्चा या बच्चे समूह में शामिल नहीं हो पाएंगे वे आऊट हो जाएंगे और उन्हें गोले से बाहर कर दिया जाएगा।

बड़े बेमन से मैंने यह खेल करवाया। मुझे लगा कि चलो कुछ तो अपना समय पास हो गया और बच्चों को भी मज़ा आया। कुछ बच्चे भी बेमन से खेल रहे थे। इसके बाद छुट्टी हो गई। अगले दिन बच्चों ने फिर कहा कि कल वाला खेल खिलवाइए। मैंने कई बहाने बनाए, जैसे - पहले ही पीरियड में यह सब नहीं होगा

....., अभी नहीं, बारिश होने वाली है ....., तुम लोग खाना खाकर आ रहे हो तकलीफ होगी, पहले हम पढ़ेंगे आखिरी पीरियड में खेलेंगे .... आदि।

इस सबके बाद भी बच्चे नहीं माने तो मैंने बच्चों की बात मानकर दोबारा इसी खेल को खिलवाया। बीच–बीच में मेरे मन में कुछ प्रश्न आते गए जिन्हें मैं बच्चों से पूछता गया तथा उनके उत्तरों से प्रोत्साहित होकर मैं और प्रश्न पूछने लगा। मुझे लगा यह खेल संभावनाओं से भरा हुआ है। मैंने कुछ इस तरह के प्रश्न पूछे -

जो बच्चे पांच-पांच का समूह नहीं बना पाए थे उनसे मैंने पूछा, "तुम्हारे समूह में कितने बच्चे कम हैं?"
बच्चों ने उत्तर दिया, "दो बच्चे।"
"यदि दो बच्चे और मिल जाए तो तुम्हारे समूह में कितने बच्चे हो जाएंगे?"
उत्तर मिला, "पांच बच्चे।"
मैंने पूछा, "कुल कितने बच्चे खेल रहे हैं?"
सबने अपने-अपने ढंग से गिनना शुरू किया, जवाब 43 था।
"कितने बच्चे आऊट हो गए?"
बच्चों ने उत्तर दिया, '3'
"यदि 2 बच्चे और बाहर निकाल दिए तो कितने हो जाएंगे?"
बच्चों ने कहा, '5'
इस तरह कुछ और प्रश्न पूछे -
"कुल कितने समूह बने?"
बच्चों ने बताया, "8 समूह।"

"एक समूह में कितने बच्चे हैं?"
"पांच बच्चे", बच्चों ने जवाब दिया।
"आठों समूहों में कुल कितने बच्चे हो गए?"
बच्चों ने कुछ क्षणों के बाद बताया, '40'

इस तरह की गिनती की गतिविधियां करवाते हुए मैं खेल में जोड़–घटाना, गुणा-भाग आदि करवाने लगा और मुझे यह अरोचक खेल भी रोचक लगने लगा। इस खेल में जो बच्चे आऊट हो जाते थे वो बाहर खड़े-खड़े देखते रहते थे। उनके चेहरे की उदासी देखकर मुझे लगा कि कुछ करना चाहिए। इसके बाद मैं उन बच्चों को बुलाकर गोले के बीच में खड़ा कर लेता और उनसे कहता था कि वे गोले में घूमने वाले बच्चों से पूछें 'बोलो भाई कितने'। अब गोले के अंदर खड़े बच्चे गोल-गोल घूमने वाले बच्चों से पूछते 'बोलो भाई कितने' और गोले में घूमने वाले बच्चे कहते 'आप बोलो जितने'। इस तरह बच्चे आपस में ही खेलने लगे, और सभी बच्चे क्रियाशील हो गए लेकिन व्यवस्था बनाने और निर्देश देने के लिए मुझे वहां खड़े रहना पड़ता था।

(हरदा के प्राथमिक स्कूल शिक्षक दिनेश शुक्ला की डायरी का अंश)

'बोलो भाई कितने' खेल शिक्षण-प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों के साथ खेले जाने वाले खेलों में से एक है। प्रशिक्षण में जब शिक्षक स्वयं खेलते हैं तो अपने अनुभवों से उसकी प्रक्रिया को महसूस करते हैं, आत्मसात करते हैं। फिर उस खेल को कक्षा में करवाने का उद्देश्य शायद ज़्यादा स्पष्ट हो जाता है - चाहे वह बच्चों को मज़ेदार गतिविधियों में लगाए रखने का हो या फिर गिनती सिखाने का तरीका। प्रशिक्षण में इन शिक्षक ने यह खेल ज़रूर खेला होगा पर वे उसे कक्षा में कैसे करवाना चाहता हैं इसकी उन्हें पूरी छूट रही। और कक्षा में किस तरह करवाया यह भी आपने पढ़ा। यह ज़रूरी लगता है कि शिक्षक को गतिविधि अपने ढंग से करवाने की स्वतंत्रता हो ताकि वह परिस्थिति के कई पहलुओं पर गौर करके कक्षा के अनुकूल ढंग से करवा पाए। जैसे:

- कक्षा में बच्चों की संख्या
- बच्चों की रुचि
- बच्चों की समझ का स्तर
- उनकी किन क्षमताओं के विकास पर ध्यान देना है आदि।

यही उसका कौशल है और यही उसके प्रशिक्षण का उद्देश्य।

जंगल की कहानी सुनानी थी तो सुनाकर वहीं समाप्त की जा सकती थी लेकिन जैसे ही शिक्षिका ने कहानी के

चित्रों पर बातचीत शुरू की तो बच्चों के बीच सोचकर अभिव्यक्त करने की क्षमता का भी अभ्यास होने लगा। दूसरे शिक्षक ने बच्चों के लिए एक मज़ेदार गतिविधि को गिनती तक सीमित न रख कर गणित की विभिन्न क्रियाओं के अभ्यास का माध्यम बना दिया।

यह ज़रूरी है कि शिक्षक में इतना खुलापन और समझ हो कि वह गतिविधि के किसी निश्चित उद्देश्य तक सीमित न रह कर उसको थोड़ा और आगे बढ़ाने की कोशिश करे। जहां उसके विश्वास में कुछ कमज़ोरी हो (जैसे - यह शंका कि फलां गतिविधि से क्या हो जाएगा?) वहां भी गतिविधि को आगे बढ़ाकर या नए प्रयोग कर एक अलग परिस्थिति में अपने अविश्वास की जांच-परख के लिए तैयार हो। क्या पता बच्चों को कौन-सी चीज़ मज़ेदार लगे और वे भी उस गतिविधि को आगे बढ़ाने में भागीदारी करने लगें!

इन दोनों गतिविधियों में बच्चों के लिए क्या था? हम यह कह सकते हैं कि दोनों गतिविधियां अधिक-से-अधिक बच्चों को अपने साथ लेने में सफल रहीं। यानी उनमें इतना खुलापन था कि हर बच्चा जो कुछ कहना चाहता था वह कह पाया। गतिविधि का अपना कोई बंधन नहीं था कि उनमें बातचीत एक ही ढंग से हो सकती थी। और न ही शिक्षकों ने बच्चों पर किसी तरह के उत्तर का दबाव डाला। इससे भाषा के विकास में जो सहयोग मिला वह तो मिला, साथ ही बच्चों का आत्मविश्वास भी बढ़ा होगा। बच्चे शिक्षक से डरते हों ऐसा भी नहीं था। तभी तो वे बार-बार शिक्षक से कह सकते थे कि उनका खेलने का मन है। क्या इसे शिक्षक और बच्चों में एक आपसी सम्मान और विश्वास का संबंध कहें? जो भी हो ऐसा लगता है कि इस स्थिति में बच्चों ने सीखा भी मन से होगा, शायद ज़्यादा ठोस तरह से। शायद सबसे ज़रूरी बात यही है कि शिक्षक और बच्चों में ऐसे सहज संबंध हों कि वे आपस में सीखने की प्रक्रिया को जानदार बनाते रहें और आगे बढ़ाते रहें (फिर हम सही विधि, सही प्रशिक्षण, सही पाठ्यक्रम जैसे बंधनों में क्यों उलझे रहते हैं?) यहां एक बात महत्वपूर्ण लगती है कि बच्चों को जब कुछ करने में मज़ा आता है तभी शायद शिक्षक का भी कुछ नया सोचने, कुछ नया जोड़ने का उत्साह बढ़ता है ..... वह भी प्रेरित होता है। शायद यह आपसी प्रेरणा और उत्साह का चक्र ही सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है।

(वेणु एंडले– एकलव्य के प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम 'प्राशिका' से संबद्ध)